1969C Condition of manuscript depositories

Shastra Bhandaron ki Durdasha: Two articles in Jain Mitra (ca 1969)

घरके माया विकट पिताने,
तेरा हृदय दुखाया।
लक्ष्मण आदि विज्ञ पुरुषोंने,
क्यों नहिं सुपथ बताया ॥ ४७ ॥
मातः मेरे सुयश कार्यमें,
आप विघ्न मत कीजे।
फलीभूत हो कार्य हमारा,
आशीष ऐसा दीजे॥
जीत रामको पुनः करेंगे,
सत्वर तेरे दर्शन।
आप व्यर्थकी आशंकासे,
व्यथित करो मत निज मन ॥४८

(क्रमशः)

शास्त्र-भण्डारोंकी दुर्दशा

ऐ० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन ब्यावरकी ओरसे गत मई-जून मासमें मैं अनेक स्थानोंके शास्त्र-भण्डारोंको देखने और नवीन ग्रन्थोंकी शोधके लिए गया था। इसका विस्तृत विवरण तो क्रमशः आगेके अंकोंमें दिया जायगा, पर पहले यह बताये बिना नहीं रह सकता कि अनेक स्थानोंमें प्राचीन हस्तलिखित शास्त्रोंकी जो उपेक्षा-पूर्ण दुर्दशा देखनेको मिली, उससे चित्तको बहुत चोट पहुँची, खासकर यह देखकर कि जहां मन्दिरोंमें मारबिल या टाइलें जडी हुई हैं, या जडी जारही हैं और मन्दिरकी सफाई आदिका भी उत्तम प्रबन्ध है, वहीं पर जिनवाणी काठकी सछिद्र जीर्ण-शीर्ण अलमारियोंमें अपने जीवनके शेष दिन बिता रही है। अधिकांश बहु मूल्य एवं अपूर्व संस्कृत-प्राकृतके शास्त्रोंको मूषकराजोंने काट-काटकर छिन्न-भिन्न कर डाला है, कितने ही दीमकोंके भक्ष्य बन चुके हैं और कितने ही सीलन-धूलि आदिसे सड गल गये हैं।

मुझे यह देखकर अत्यन्त दुःख हुआ कि जहां अभी हालमें ही पंचकल्याणक प्रतिष्ठा बडे ठाठ-बाटसे हुई, वहांके अनेक मन्दिरोंके शास्त्र-भण्डार वर्षोंसे खुलेतक भी नहीं हैं। मुझे वहांके २-३ भण्डारोंको देखनेका अवसर मिला। वर्षोंसे नहीं खुलनेके कारण तालोंमें जंग लग गई है, जो बडी कठिनाईसे खोले जा सके। खोलनेपर देखा गया कि अलमारी मकडीके जालोंसे आच्छादित एवं धूलिसे धूसरित हो रही है और शास्त्र अस्त-व्यस्त दशामें पडे हुए हैं। अपने एक नजदीकी रिश्तेदारकी सहायतासे अलमारियोंको खोला गया, उनकी धूलि झाडी, जाला साफ किया, तब कहीं शास्त्रोंको उठाकर देखा जा सका।

दि० सम्प्रदायके परम मान्य एवं सर्व प्रथम लिपि-बद्ध हुए जिन धवलादि सिद्धान्त ग्रन्थोंको हजारों रुपये लगा करके २५-३० वर्ष पूर्व लिखाया गया था और जिनकी कि कुछ वर्ष पूर्व तक श्रुतपंचमीके दिन बडे ठाठ-बाटसे पूजन होती रही है, वे भी इस वर्ष सदैवके अपने अधिकारसे वंचित रहे। लोग शायद पंचकल्याणक प्रतिष्ठाके द्वारा इतना अधिक पुण्य-संचय कर चुके थे और विद्वत्परिषदके अधिवेशन द्वारा इतना अधिक ज्ञान-लाभ ले चुके थे कि इस वर्ष उन्हें अपने परम मान्य ग्रन्थोंकी पूजा करने एवं संभालने आदिकी भी सुध नहीं रही।

पाठक, स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं कि जब बडे शहरोंके-जहां बीसों विद्वान् मौजूद हैं-शास्त्र-भंडारोंकी ऐसी दशा हो, तब साधारण गांवोंके भण्डारोंकी क्या दशा होगी? एक गांवमें देखा कि जिन संस्कृत-प्राकृत शास्त्रोंके पत्र स्वाध्याय करनेवालोंकी असावधानी एवं संभालनेकी कमीके कारण इधर-उधर बंध गये थे; ऐसे अनेक शास्त्रोंके बंडलों एवं पत्रोंको बोरीमें भरकर मन्दिरके दरवाजेके ऊपरकी पालकीमें खुलेमें रख दिया गया, जो वर्षा-आंधी आदिसे बिलकुल ही गल गये। जब उस बोरीको उठानेका प्रयास किया गया, तो वह वहीं बिखर गई और शास्त्रोंका चूरा ही हाथ लगा।

एक अन्य बडे शहरके एक विशाल मंदिरमें यह भी देखा कि ऐसे अस्त-व्यस्त हुए अनेक शास्त्रोंके बंडल वेदीके ऊपरी मंजिलमें रखा दिये गये, जो दीमकोंके भक्ष्य होते रहे और धूलिसे धूसरित। दो तीन बारके चक्करसे जब वहांके प्रबन्धकको साथ लेकर बाजार-बंदीके दिन ४-५ आदमियोंकी सहायतासे उक्त भंडार ऊपरसे नीचे लाया गया—तो देखा गया कि अभी कुछ वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हुए धवल-सिद्धांतके शास्त्राकार दो भाग भी एक वेष्टनमें बन्दे हैं, जिनमेंसे नीचेके एक भागको दीमकोंने खा डाला है। इससे अधिक असावधानी व लापरवाही और क्या हो सकती है? हस्त-लिखित पुराने ग्रन्थों एवं पत्रोंकी दुर्दशाका तो कहना ही क्या है?

एक और अन्य प्रसिद्ध शहरके प्राचीन शास्त्र भण्डारकी दुर्दशाको देखकर तो हृदय ही विदीर्ण हो गया। वहांके दीवालकी अलमारियोंमें बन्द भण्डारको एक विद्वानकी प्रेरणासे खोला गया तो अनेक शास्त्रोंको चूहों और दीमकोंके द्वारा नष्ट हुआ पाया गया। चूहोंकी कतरन ही लगभग एक बोरी निकली। और अनेक अपूर्व शास्त्र दीमकोंसे खाये हुए मिले। सुननेमें आया महावीर शोध संस्थान आगराके अधिकारी उस सारे भण्डारको मूल्य देकरके भी लेना चाहते थे, पर शायद सौदा नहीं पटनेके कारण वह वहां नहीं जा सका और यहीं पड़ा हुआ बर्बाद हो गया। वहांके भण्डारकी सूची भी २-२ बार दो विद्वानोंने बनाई, पर प्रयत्न करनेपर भी वह नहीं प्राप्त हो सकी।

कुछ स्थानों पर तो और भी दुःखभरी कहानी सुननेको मिली। वहांके लोगोंने अधूरे शास्त्रोंके पत्रोंको या तो अग्निमें आहुति देकर भस्म कर दिया, या जलमें प्रवाहित कर दिया। ऐसे लोगोंको ज्ञात होना चाहिए कि इन अधूरे पत्रोंका भी उपयोग है। कभी-कभी उनमें अनेक महत्वपूर्ण स्तोत्र, प्रशस्तियां और अन्य ऐतिहासिक सामग्री मिल जाती है। इसी प्रवासमें मुझे स्वयं ऐसे बीसों पत्र मिले-जिनमें उक्त प्रकारकी महत्वपूर्ण सामग्री निहित है।

जिन-जिन स्थानोंके शास्त्र-भण्डारोंकी ऐसी दुर्दशा है, आश्चर्य और दुःखकी बात तो यह है कि वहांके लोग जिनवाणीकी ऐसी दुर्दशा कर देनेके बाद भी न उसे दूसरोंको देना चाहते हैं और न स्वयं उसे सुरक्षित ही रख सकते हैं। चाहिए तो यह कि जहांकी समाज शास्त्र-भण्डारोंको सुरक्षित न रख सके, या स्वयं उसका उपयोग न कर सके, वह अपने यहांका भण्डार सहर्ष सरस्वती-भवनों, शोध-संस्थानों एवं अन्य *उपयोगी संस्थाओंको स्वयं भेंट करदे। जिन-*वाणी सभीकी माता है, सारी समाजका उसपर अधिकार है, अतएव सभीको उसका लाभ मिलना चाहिए। लिखानेवालोंने सभीके उपकारार्थ उसे लिखाया है। किसी एक मन्दिरमें विराजमान कर देने मात्रसे ही वह वहांकी सम्पत्ति नहीं हो जाती है।

मैंने जिन२ स्थानोंके शास्त्र-भण्डारोंकी दुर्दशाका उल्लेख किया है, उनका नाम-निर्देश जान-बूझकरके इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि वहांकी समाज अब भी जिनवाणी माताके प्रति अपना कर्तव्य-पालन करनेके लिए जागरूक हो और उसकी ठीक तरहसे सार-संभाल करे। यदि वह ऐसा करनेमें असमर्थ है तो फिर उसे चाहिए कि वह उपयोगी संस्थाओंको स्वयं सहर्ष समर्पण कर देवे।

इस प्रसंगमें मेरा अपने विद्वद्वर्गसे भी यह नम्र निवेदन है कि आप लोग सरस्वतीके पुत्र कहलाते हैं। आपका यह कर्तव्य है कि जहां भी आपलोग रहें, वहांके शास्त्रभंडारोंकी स्वयं संभाल करें, समय२ पर उनकी विशिष्ट सामग्रीका परिचय जैन-पत्रोंमें देते रहें और स्थानीय जनतामें शास्त्र-स्वाध्यायकी रुचि जागृत करते रहें।

सरस्वतीका एक लघु सेवक-
हीरालाल शास्त्री-ब्यावर।

शास्त्र भण्डारोंकी दुर्दशा

पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन ब्यावरकी ओरसे मैं इसी जून मासमें म. प्र. के कुछ प्रमुख स्थानोंके शास्त्र-भण्डारोंकी छान-बीन करनेके लिए किसी नवीन ग्रंथकी प्राप्तिकी आशाको लेकर गया था। कोई नवीन ग्रन्थ तो हाथ नहीं लगा, पर शास्त्र-भण्डारोंकी जो दुर्दशा देखी, उससे चित्त अवश्य तिल-मिला उठा।

सबसे अधिक दुःख छतरपुरके पंडित जवाहरलालजीके मन्दिरके भण्डारको देखकर हुआ, जहां काठकी अलमारीके कांच नीचे भागके टूटे पड़े हैं और उनके अन्दर चूहे घुसकर शास्त्रोंका कतरब्यूंत कर रहे हैं। मालीके द्वारा वहांके प्रबन्धकजीको बुलाया जो मन्दिरके सामने ही रहते हैं। तो कहा गया कि वे कटिवेदना पीड़ित हैं, उनके सुपुत्रोंको बुलाने पर मालूम हुआ कि वे बाहर गये हुये हैं। उनकी श्रीमतीजीको बुलाने पर उत्तर मिला कि हमको अवकाश नहीं। पण्डितजीसे कहदो कि वे हमारे शास्त्रोंको हाथ न लगावें, जैसे हैं वैसे ही पड़े रहने दें।

यहां यह उल्लेख है कि आजसे सवासौ वर्ष पूर्व छतरपुरमें पं० जवाहरलालजी हो गये हैं जो शास्त्रोंके अच्छे मर्मज्ञ थे तथा जिन्होंने भावपूर्ण अनेक भजनोंके साथ सम्मेदशिखर विधान बनाया है। जो कि अनेक बार मुद्रित हो चुका है। उनके कुछ भजनोंका संग्रह हालहीमें वहांके उत्साही युवक श्री सुरेन्द्रकुमारजीने स्वयं ही प्रकाशित किया है। उन्हींके प्रयत्नसे वहांके शेष तीन मंदिरोंके शास्त्र-भण्डारोंकी सूची भी तैयार हो सकी है। जिसे उनके पास देखा, पर उसमें कोई नवीन ग्रन्थ नहीं मिला। रद्दीके गये बस्तोंमें सम्भव है कि कुछ अधूरे संस्कृत प्राकृतके ग्रन्थ उपलब्ध होते, पर वहांके प्रबंधक बाहर देनेकी तो बात दूर रही वहींके मंदिरोंमेंसे किसी एकमें भी सर्व शास्त्रोंको एकत्रित कर सुव्यवस्थित ढंगसे रखनेको तैयार नहीं है।

जिन मंदिरोंके शास्त्र-भण्डारोंकी सूची बनी है व शास्त्र भी लोहेकी जालीदार अल-मारीमें रखे हैं, जो प्रतिदिन उड़नेवाली धूलसे धूलधूसरित होकर जीर्णावस्थाको प्राप्त हो रहे हैं। मैं छतरपुरमें डॉ० नरेन्द्रजी एम० ए० पी० एच० डी० के यहां ठहरा था, वे यद्यपि बाहर गये थे, तथापि उनकी श्रीमती विदुषी रमा जैन एम० ए० शास्त्री ने डॉ० नन्दलालजी डी० एल० सी० ने मेरे खान पान आदिकी पूर्ण व्यवस्था की।

टीकमगढ़में श्री म० बालचन्दजी टडैयाके यहां ठहरा। आप सप्तम प्रतिमाधारी धर्म-प्रेमी व्यक्ति हैं। आपके प्रयत्नसे यहांके मन्दिरोंके प्रबन्धकोंने अनेक शास्त्र-भण्डारोंको प्रेमसे दिखाया। नये मंदिरको छोड़कर शेष मंदिरोंके शास्त्रोंकी सूची नहीं है, अतः उनके देखनेमें काफी समय लगा। फिर भी कोई नवीन ग्रन्थ नहीं मिला। एक गुटका वि० सं० १७३३ का लिखा अवश्य मिला जिसमें विभिन्न विषयोंका संकलन है। कुछ स्तोत्र आदि नवीन भी दिखे, पर वह भी सरस्वती भवनको भेंटमें नहीं मिल सका। हांलांकि समाजके आग्रहसे तीन दिनतक लगातार शास्त्र प्रवचन किये और लोगोंने प्रसन्नता भी व्यक्त की।

टीकमगढ़के पासमें अस्तौन एक प्राचीन स्थान है जहांके अनेक जैन भाई नागपुर टीकमगढ़ आदि नगरोंमें चले गये हैं। मंदिर बहुत प्राचीन है। वहांका शास्त्र भण्डार टीकमगढ़के नये मंदिरमें रख दिया गया है, उसकी भी छान बीन की। मगर कोई नवीन ग्रंथ नहीं मिला। अस्तौनके श्री सुमतीचंद्रजीके पास कुछ अधूरे शास्त्रोंके बस्ते बंधे पड़े हैं। उनकी छानबीन करने पर संस्कृत श्रेणिक चरित्रकी अधूरी प्रति मिली जो बहुत सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुयी है, वह उन्होंने भवनको भेंटमें दी।

टीकमगढ़के पासमें दिगौड़ा भी प्राचीन स्थान है यहां दो मंदिर हैं यहींके निवासी पं० देवीदासजीने आजसे दोसौ वर्ष पूर्व परमानंद-विलास नामक विस्तृत ग्रन्थकी काव्य रचना वि. सं. १८१२ से लेकर १८२४ तक की है। परमानद विलासकी दो प्रतियां विगत वर्षके परिभ्रमणमें विभिन्न स्थानोंसे भवनको प्राप्त हुयी थीं। उनमें परस्पर कुछ अन्तर है। अतः यह पूर्ण आशा थी कि दिगौड़ेमें उनके हाथकी लिखी हुयी कोई प्रति अवश्य मिल जायेगी, पर दोनों ही मंदिरोंकी छानबीन करने पर भी वह नहीं मिली। वहांके लोगोंने बताया कि बहुतसे शास्त्र अति जीर्ण हो गये थे अतः उन्हें बहुत पहले ही तालाबमें विसर्जित कर दिया गया है। यह है हमारे शास्त्र-भक्तोंकी परम भक्तिका अपूर्व उदाहरण।

बिजावरमें एक ही जैन मंदिर है। उसके व्यवस्थापक श्री भागचन्द लक्ष्मीचन्दजी बहुत ही सज्जन और धर्मात्मा व्यक्ति हैं। आपका पूरा परिवार प्रतिदिन सामायिक पूजन एवं शास्त्र स्वाध्याय करता है। यहांके शास्त्रभण्डारको देखा। यद्यपि वह वर्तमानमें लोहेकी अल-मारीमें रखा है पर इसके पूर्व वह काठकी अलमारीमें था। उसमें घुसकर चूहोंने वेष्टन और शास्त्र काट डाले थे। वहांसे उठाकर लोहेके अलमारीमें वे ज्योंके त्यों रख दिये गये थे। अतः शास्त्रोंको निकलवाकरके उनके फटे फटे वेष्टन बदले और व्यवस्थित करके उन्हें बांधा।

यहांपर भी कुछ बस्तोंमें जीर्ण शीर्ण एवं अपूर्ण शास्त्र बन्धे हुए थे। उक्त सज्जनसे कहने पर उन्होंने उन सबको सरस्वतीभवनके लिये सहर्ष भेंट कर दिये, जिनमें कुछ नवीन सामग्री सन्निहित है।

पन्ना स्टेट उत्तम हीरोंकी खानोंके लिये विश्व-प्रसिद्ध है। यहां श्री परमलालजी जैनके यहां ठहरा। आप वर्षों तक खजुराहो क्षेत्रके मंत्री रहे हैं, और वहांके मंदिरोंकी सुव्यवस्थामें महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यहां पर दो मंदिर हैं—एक प्राचीन दूसरा नवीन। दोनों काफी अन्तरसे अवस्थित हैं और प्रबंधक भी अलग२ हैं। प्राचीन मंदिरके प्रबंधक श्री पन्नालालजी जैनने बड़े प्रेमसे शास्त्र-भण्डार दिखाया। सूची बनी हुयी थी, पर उसमें कोई नवीन ग्रन्थ नहीं मिला। कुछ बस्तोंमें जीर्ण-शीर्ण एवं अधूरे पत्र बंधे थे। उन्हें खोलकर छान-बीन की तो कुछ महत्वपूर्ण सामग्री मिली, जिसमें एक श्वेतांबर गुरुपट्टावली प्रमुख है इसके तीन पत्रोंमें भगवान महावीरसे लेकर विक्रमकी १६ वीं शताब्दी तक पट्टाशीन होनेवाले ६३ आचार्योंकी नामावली उनकी आयु आदिके विवरणके साथ दी गई है।

अन्तिम नामोंमें श्री हीरविजय सूरि, तत्पट्टे श्री विजयसेन सूरि, तत्पट्टे श्री विजयदेव सूरि, तत्पट्टे श्री विजयप्रभु सूरि और तत्पट्टे श्री सिंहसूरिका नाम दिया गया है। पत्र और स्याहीकी लिखावटको देखते हुये यह पट्टावली लगभग चारसौ वर्ष पुरानी प्रतीत होती है। श्री पन्नालालजीने इसे और इसके साथ कुछ और प्राचीन अपूर्ण पत्रोंको भवनके लिए दिया है।

यहांके नये मंदिरके अध्यक्ष और मंत्री श्री मूलचन्दजी अच्छेलालने नये मंदिरके शास्त्र भण्डारको दिखानेकी उदारता दिखायी। और उसमेंके अनेक अपूर्ण ग्रंथोंके पत्रोंको भवनके लिये भेंट किया, जिनमें अनेक नवीन पूजायें और स्तुति भजन आदि लिखे हुये हैं। भवनको भेंट करनेवाले उपर्युक्त सभी महानुभाव धन्यवादके पात्र हैं। साथ ही उन लोगों पर दुःख भी है कि जो शास्त्र भण्डारोंकी न तो स्वयं समुचित सम्हाल करते हैं, न सम्हाल करनेवालोंको दिखाते हैं और न सरस्वती भवन जैसे प्रामाणिक संस्थाको ग्रंथ भेंट करते हैं जहां पर कि शास्त्रोंकी पूर्णरूपसे सुरक्षा की जाती है। और जीर्ण-शीर्ण पत्रों एवं ग्रन्थोंका काया कल्प भी कराया जाता है।

विगत वर्षके परिभ्रमणमें मैंने जिन नगरोंके शास्त्र-भण्डारोंके दुर्दशाके समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित किया था, उनकी दशा आज और भी दयनीय हो गयी है, फिर भी उनके प्रबंधकोंको इसकी रत्तीभर भी चिंता नहीं है।

मेरा प्रत्येक नगरके समाज और स्थानीय विद्वानोंसे निवेदन है कि वे अपने नगरोंके शास्त्रोंकी समुचित सार-सम्हाल करें।

यदि सत्ताधारी लोग उन्हें यह कार्य न करने देवें तो पूरी समाजको एक होकर उनके हाथसे सत्ता छीन लेना चाहिये और जहां पर जैसे भी शास्त्रोंकी सुरक्षा सम्भव हो उस उपायका आश्रय लेना चाहिये, तभी प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित रह सकेंगे। अन्यथा दीमकों, चूहों और धूल, सीलन आदिसे उनका नाम भी शेष न रहेगा।

विनीत—हीरालाल शास्त्री, ब्यावर।

शास्त्रभंडारोंका निरीक्षण

(पं० हीरालाल शास्त्री, ब्यावर)

विदिशा (भेलसा)-यह मध्य प्रदेशका एक प्रसिद्ध प्राचीन नगर है, जिसे दशवें तीर्थंकर शीतलनाथजीकी जन्मभूमि होनेका सौभाग्य प्राप्त है। इसमें किलेके भीतरका प्राचीन बड़ा मन्दिर बहुत विशाल और उत्तुंग शिखरोंवाला है। इसका शास्त्रभण्डार भी बहुत पुराना है। मन्दिर और भण्डारके प्रबन्धकोंने उसकी व्यवस्था बहुत उत्तम कर रखी है। सभी शास्त्रोंकी सूची बनी हुई है जिससे ग्रन्थोंकी छानबीनमें बहुत सुविधा रही। सूचीमें साधु-लक्षण नामसे एक ग्रन्थ दर्ज देखकर उसे देखनेकी उत्सुकता हुई और निकलवाकर देखा तो वह भविष्यदत्त चरित निकला। उक्त नाम रखनेका भ्रम सम्भवतः उसकी प्रत्येक सर्गके अन्तमें लिखित यह पुष्पिका रही है—

इति श्री भविष्यदत्तचरिते विबुधश्रीधर-विरचिते साधुलक्ष्मणनामाङ्किते प्रथमः सर्गः।

यद्यपि इसमें ग्रथका नाम बहुत स्पष्ट शब्दोंमें भविष्यदत्त चरित उल्लिखित है, पर उस पर दृष्टि न जाकर सूची बनानेवालोंकी दृष्टि साधु लक्ष्मण पद पर चले जानेसे ग्रंथको साधु लक्षण लिख दिया गया। वस्तुतः इस चरितकी रचना किसी लक्ष्मण साहुके निमित्तसे हुई है। ग्रंथ हाथके बने पतले मजबूत कागज पर वि० सं० १५९५ में लिखा गया है। इसकी अंतिम प्रशस्ति इस प्रकार है—

शुभं भवतु संवत् १५९५ वर्षे सोमवासरे वैशाख सुदि सोमवासरे (१) श्री मूलसंघे नंद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्रीपद्मनन्दिदेवा। त० भ० श्री शुभचन्द्रदेवा। त० भ० श्री जिनचन्द्र देवा। त० भ० प्रभाचन्द्रदेवा। तच्छिष्यमण्डलाचार्य श्रीधर्मचन्द्रदेवा। तदाम्नाये खण्डेलवालान्वये भवसा गोत्रे संपाहा० तद्भार्या पोंसरि तत्पुत्र सा० गुणा, द्वि० फलहू, तृ० पुत्र सा० मोल्हाभेला सा० गुणा भार्या रत्न तत्पुत्र कान्हा फलहू भार्या पूल्ही। तत्पुत्र राजा सा० गो......

इससे आगेका पत्र नहीं पाये जानेसे यद्यपि उक्त प्रशस्ति अधूरी रह गई है तथापि प्राप्त अंशसे यह तो स्पष्ट है कि इसे वि० सं० १५९५में खण्डेलवाल जातिके भैंसा गोत्रीय साहू संपाहाके वंशजोंने लिखाया है।

इस प्रकार यह प्रति ४३० वर्ष पुरानी है। कागज पुष्ट, अक्षर सुवाच्य एवं सुन्दर हैं। कुल पत्र संख्या ८७ रही होगी। जिसमें अन्तिम पत्र और ८५ नं० का पत्र नहीं है। सरस्वतीभवन ब्यावरमें भी यद्यपि उक्त ग्रंथकी २ प्रति हैं, पर वे सब पीछेकी लिखी हुई हैं, अतः वह वहांके व्यवस्थापकोंके सौजन्यसे संशोधनार्थ भवनमें लाई गई है।

यहांके भण्डारमें एक महत्वपूर्ण नवीन ग्रंथ मिला है, जो बुन्देलखण्डके ओरछा राज्यान्तर्गत दिगौड़ा-निवासी श्री० पं० देवीदासजीकी रचनाओंका संग्रह है। जिसे उन्होंने स्वयं 'परमानंद-विलास' यह नाम दिया है।

इसकी यहां दो प्रतियां मिलीं। एक वि० सं० १८८८ के वैशाख बदी १ की लिखी हुई है, जो पुष्ट कागज पर बड़े अक्षरोंमें है। दूसरी वि० सं० १९३१ के भादों बदी ५ की लिखी है। इसके अक्षर छोटे और कागज कमजोर है। पहली प्रतिकी पत्र सं० १५३ है और दूसरीकी ८१। इसका कारण मिलान करने पर यह ज्ञात हुआ कि पहली प्रतिमें देवीदासजी रचित-चौबीस तीर्थंकरोंकी २४ पूजायें हैं और दूसरीमें वे नहीं हैं।

परमानन्द-विलासकी विषयसूची इस-प्रकार है—१-परमानन्दस्तोत्र, २-जीवचतुर्भेदादिबत्तीसी, ३-जिनअन्तरावली, ४ धर्मपचीसी, ५-पञ्चपद पचीसी, ६-दशधासम्यक्त्व त्रयोदशी, ७-पुकार-पचीसी, ८-वीतराग-पचीसी, ९-दर्शनछत्तीसी, १०-बुद्धिबावनी, ११-तीनमूढता अड़तीसी, १२-देवशास्त्र गुरुपूजा, १३-शीलांग चतुर्दशी, १४-सात व्यसनके कवित्त, १५-विवेकबत्तीसी, १६-स्वजोगरासो, १७-मालोच भवान्तरावली, १८-पञ्चवरणके कवित्त, १९-जोग-पचीसी, २०-द्वादशभावना-बावनी, २१-जिनस्तुति, २२-आदिनाथ स्तुति, २३-पदपंक्ति भजन, २४-उपदेशजकरी, २५-आरती, २६-चौबीस तीर्थंकरोंकी २४ पूजाएं, २७-अंगपूजा, २८-फुटकर भजन, २९-शीतलाष्टक, ३०-पञ्चम कालकी विपरीत दशा, ३१-प्रवचनसारका भाषापद्यानुवाद।

प्रस्तुत ग्रन्थमें सबसे पहिले संस्कृतके प्रसिद्ध परमानन्द स्तोत्रका पद्यानुवाद दिया गया है। संभवतः इसीलिये उन्होंने अपनी रचनाओंके संग्रहका नाम 'परमानन्द-विलास' रखा है।

उक्त रचनायें सवैया, कवित्त, छप्पय, चौपाई, कुण्डलियां, अडिल आदि अनेक छन्दोंमें रची गई हैं। जिनकी संख्या ४२१ है। अक्षर-संख्याके हिसाबसे ५००० श्लोक प्रमाण हैं।

पण्डित देवीदासजीकी जाति खरौआ गोलालारे थी। इन्होंने उक्त ग्रन्थके अतिरिक्त अनेक भजन भी बनाये हैं जो अत्यन्त भक्ति-पूर्ण आध्यात्मिक एवं उपदेशात्मक है।

परमानन्द विलासकी रचना वि० सं० १८२४ के सावन सुदी ८ को समाप्त हुई है, अतः उसके रचयिताका जन्म वि० सं० १८०० के पूर्वका होना निश्चित है। 'पुकार-पचीसी'को छोड़कर अन्य कोई रचना अभीतक मुद्रित नहीं हुई हैं।

यहांके मन्दिरमें श्री खूबचन्द्र रचित 'अकलसार' नामका एक और भी नया ग्रंथ मिला है, जिसे उन्होंने स्वयं ही नाना प्रकारकी शंकाएं उठा-उठाकर उनके समाधान रूपमें रचा है। यह सर्व साधारण जनोंके लिए और खास कर अन्य मतावलम्बियोंके सम्बोधनके लिए बहुत उत्तम है।

अकलसारके रचयिता श्री खूबचन्द्रजीके पितामह श्री ताराचंद्रजी भोपाल निवासी थे। इनकी जाति परवार थी और ये मल्लेमूरी कोछलनगोत्री थे। इनके दो पुत्र हुए-दुलीचंद और पृथ्वीराज। पृथ्वीराजसे श्री खूबचन्द्रजीका जन्म वि० सं० १८०० के आसपास हुआ। क्योंकि इनकी बनाई हुई उपदेश छत्तीसी वि० सं० १८४६ के माघ बदी १२ को रची गई है, जैसा कि इस दोहेसे प्रकट होता है-

अष्टादशको सालमें, अन्त छियाली सार।
माघ बदी द्वादशमको, कही खूब परवार॥

अकलसार, पत्र ११६/A

खूबचन्द्रजी भोपालसे आकर अपने मामाके पास भेलसा (विदिशा) में रहने लगे थे। यहींपर आपने श्री भवानीदासजीके सम्बोधन करनेके लिए अकलसार ग्रन्थको बनाया। खूबचन्द्रजी अतः भोपाल निवासी थे और वहाँपर मुसलमानी राज था, अतः वहांकी भाषा भी उर्दू थी। यही कारण है कि उनकी इस रचनामें उसका प्रभाव पद-पदपर दृष्टि-गोचर होता है।

अपने ग्रंथका नाम अकलसार रखनेका भी यही कारण प्रतीत होता है। उर्दू, फारसीमें बुद्धिको अक्ल कहते हैं। उसीका बिगड़ारूप अकल है। बुद्धि या अकलका माहात्म्य बताते हुये खूबचन्द्रजीने अकल एकादशीकी रचना की है। उसका एक छन्द इस प्रकार है—

अकलसे पहिचानिये, देव गुरुको रूप।
कौन देव तो सत्य है, को जगवासी भूप॥
को जगवासी भूप, कौन गुनके हैं जोगी।
कर नर अब पहिचान, कौन षट्रसके भोगी॥
कहै खूब मनमांहि, अकलबिन बेन्चे बकल।
अकल मीर वजीर, बादशा सबमें अकल॥

अकलसारकी प्रतियां बीना और ललितपुरके भण्डारमें भी हैं।

उपर्युक्त दोनों ही ग्रन्थ प्रकाशनके योग्य हैं। अतः ये दोनों ही लगभग डेढ़सौ वर्षों से विदिशामें सुरक्षित रहे हैं और वहांकी समाजने आजतक इनका स्वाध्याय कर रस, पान किया है। अतः वहांकी समाजको इन दोनों अपूर्व ग्रन्थोंके प्रकाशनार्थ आगे आना चाहिये।

(क्रमशः)